बदलता परिवेश और मनुष्य

कविता मेहरोत्रा

गत वर्ष दिल्ली जाना हुआ जिनके घर रूकी थी, वे सब हमारे आने से बड़े प्रसन्न थे, पर एक विषाद की रेखा उनकी प्रसन्नता पर हावी हो रही थी, क्योंकि उनके पुत्र का एक मित्र हादसे का शिकार हो गया था। वह २७ वर्षीय नौजवान वायुसेना का एक होनहार पाइलट था, जिसे केदारनाथ में जो लोग मर गये थे उनके दाह-संस्कार के लिए लकड़ी पहुँचाने की ड्यूटी दी गई थी। इस दौरान ही वह हादसे का शिकार हो गया। एक घर का चिराग जलने से पहले ही बुझ गया। एक होनहार युवक अपने जीवन में कुछ करने से पहले ही काल के गाल में समा गया। एक त्रासदी उसे लील गई, किन्तु पिछले वर्ष केदारनाथ में जो कुछ हुआ, जिसमें हजारों मनुष्यों ने अपनी जान गँवा दी। हजारों घर सूने हो गए। एक त्रासदी जिसने हमें पूरी तरह से झकझोर दिया। वह त्रासदी मनुष्य द्वारा ही निर्मित थी और स्वयं मनुष्य ही उसका शिकार हो रहा था। हमने अपने लोभ को इतना अधिक बड़ा कर लिया कि वह अब हमें ही लील रहा है। हमारे धार्मिक स्थलों ने अब पर्यटन का रूप ले लिया है। धार्मिकता वहाँ केवल नाम मात्र की ही रह गई है। सैर-सपाटे के स्थल वे अब ज्यादा हो गये हैं। वर्त्तमान समाज भौतिकता से बहुत ज्यादा आक्रान्त है। घूमना-फिरना, मौज-मस्ती करना ही आज के जीवन का ध्येय बन चुका है। भौतिक संसाधनों की चाह और उसके बगैर बिलकुल नहीं रह पाना आज के जीवन का अभिन्न हिस्सा बन चुका है। गत वर्ष केदारनाथ में मनुष्य की इसी मदान्धता ने एक प्रलय का रूप ले लिया। पर्वत-स्थल पर नदी किनारे इतने बड़े-बड़े होटल और नदी के पास एकत्रित होता कूड़ा ही मनुष्य के विनाश का कारण बन गया।

इस त्रासदी से ठीक से हम उबर भी नहीं पाये थे कि गत् २५ अप्रैल को नेपाल में आए भूकम्प ने हमें फिर से कँपा दिया। भूकम्प तो भारत में थी आया पर उसका स्वरूप भारत में उतना भयावह नहीं था जितना कि नेपाल में। नेपाल में तो उसने अच्छी खासी तबाही मचा दी थी। चारों और उजाड़ दिखाई देने लगा। एक कवि ने उसे हम प्रकार वर्णित किया है -

'भूचाल से दहल गया
बदल गया सब कुछ
भय सफेद कागज बन
सब चेहरों पर चिपक गया

जब धरती ही डोले
बार-बार, रूक-रूक
खाती हिचकोले
तब थामने को कुछ
अपना दिल ही तो बचता है।[१]''

पूर्वकाल से हम सभी भारतीय लोग प्रकृति को ईश्वर सदृश ही मानते चले आए हैं और उसके विभिन्न स्वरूपों की पूजा भी करते रहे हैं। सच पूछे तो वे प्रकृति में ही ईश्वर का दर्शन करते रहे हैं। प्रसाद ने 'कामायनी'में इसका वर्णन बड़े ही सुन्दर शब्दों में किया है -

'महानील इस परम व्योम में,
अन्तरिक्ष में ज्योर्तिमान
ग्रह नक्षत्र और विधुत्कण किसका करते से सन्धान ।
छिप जाते हैं और निकलते आकर्षण में खिंचे हुए,
तृण वीरूध लहलहे हो रहे किसके रस में सिंचे हुए?
सिर नीचा कर किसकी सत्ता सब करते स्वीकार यहाँ,
सदा मौन हो प्रवचन करते, जिसका वह अस्तित्व कहाँ?
हे अनन्त रमणीय। कौन तुम? यह मैं कैसे कह सकता,
कैसे हो? क्या हो? इसका तो भार विचार न सह सकता।
हे विराट। हे विश्वदेव। तुम कुछ हो, ऐसा, होता भान।[२]'

प्रकृति हमें ईश्वर का दिया हुआ निःस्वार्थ वरदान है। मनुष्य की प्रकृति या प्रवृत्ति तो समय के साथ बदलती रहती है परन्तु प्रकृति अपनी टेक कभी नहीं छोड़ती, वह हमें नियत समय से सारी वस्तुएँ प्रदान करती रहती है। वर्षा के समय वर्षा, शीत में शीत, मौसम के अनुसार फल फूल अनाज इत्यादि और अगर वह जरा भी इधर उधर होती है तो हम बेसब्र हो जाते हैं। मानसून का देर से आना, कम आना हमारी-सारी अर्थव्यवस्था को लचर बना देता है। हमे चाहे अपने को कितना भी अधिक विकसित माने पर प्रकृति की मार हमें बार-बार ये याद दिला देती है कि उसके सामने हम कितने कमजोर और बेबस है, किन्तु मनुष्य अपने घमण्ड में यह मानने को तत्पर नहीं होता। कवि अज्ञेय ने अपनी एक कविता में प्रकृति और मनुष्य को सामने रख मनुष्य के स्वार्थ को बड़ी सुन्दरता से दर्शाया है -

'सबेरे उठा तो धूप खिल कर छा गई थी
और एक चिड़िया अभी - अभी गा गयी थी।

मैंने धूप से कहा मुझे थोड़ी गरमाई दोगी उधार?
चिड़िया से कहा; थोड़ी मिठास उधार दोगी?
मैंने घास की पत्ती से पूछाः तनिक हरियाली दोगी
तिनके की नोक भर?
शंखपुष्पी से पूछा उजास दोगी किरण की ओक भर?
मैंने हवा से माँगा थोड़ा खुलापन बस एक प्रश्वास
लहर से एक रोम की सिहरन पर उल्लास
मैंने आकाश से माँगी
आँख की झपकी भर असीमता - उधार
सब से उधार माँगा, सब ने दिया
यों मैं जिया और जीता हूँ
क्योंकि यही सब तो है जीवन-
गरमाई, मिठास, हरियाली, उजाला
गन्धवाही मुक्त खुलापन, लोच उल्लास, लहरिल प्रवाह
और बोध भव्य निर्वास निस्सीम का।
वे सब उधार पाए हुए द्रव्य
रात के अकेले अन्धकार में
सपने में जागा जिसमें
एक अनदेखे अरूप ने पुकार कर
मुझसे पूछा था; क्यों जी,
तुम्हारे इस जीवन में
इतने विविध - अनुभव है
इतने तुम धनी हो
तो मुझे थोड़ा प्यार दोगे, उधार, जिसे मैं
सौगूने सूद के साथ लौटाऊँगा
.....
उसने यह कहा
पर रात के घुप अँधेरे में

मँ सहमा हुआ चुप रहा, अभी तक मौन हूँ
अनदेखे अरूप को
उधार देते मैं डरता हूँ
क्या जाने यह याचक कौन है।[३]'

यह सच है कि मानव सृष्टि का श्रेष्ठतम प्राणी है। ईश्वर ने उसे बहुत सारे वरदान दिए है और वह संसार का स्वामी बन बैठा है। उसने लगभग अपने आपको नियन्ता ही मान लिया है। वह समझता है कि वह सारे संसार का स्वामी है और वह जो चाहे कर सकता है। अपने इसी अभिमान के चलते उसने प्रकृति का दोहन करना प्रारम्भ कर दिया है? यह जानते हुए भी इसके सामने वो असहाय है। यदि हम सृष्टि के इतिहास की और दृष्टिपात करते हैं तो पाते हैं कि सृष्टि का विध्वंस भी मनुष्य की इसी दोहन प्रवृत्ति का परिणान है। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि जयशंकर प्रसाद की श्रेष्ट रचना 'कामायनी' की बात की जाय तो प्रसाद ने अपने इस महान ग्रन्थ में मनुष्य की इसी दुष्प्रवृत्ति की ओर दृष्टिपात किया है। देव सृष्टि के विध्वंस का कारण उनकी अतिशय लालसा ही तो है -

'प्रकृति रही दुर्जेय पराजित हम
सब थे भूले मद में
भोले थे, हाँ तिरते केवल सब विलासिता
के मद में
वे सब डूबे, डूबा उनका विभव, बन गया पारावार
उमड़ रहा था देव सुखों पर दुःख जलधि का नाद अपार।[४]'

X X X X

'विकल वासना प्रतिनिधि वे सब
मुरझाये चले गये
आह! वे जले अपनी ज्वाला से
फिर वे जल में गले जले।[५]'

आगे प्रसाद कहते हैं कि क्या मनुष्य इतना भी नहीं समझता है-

'जीवन तेरा क्षुद्र अंश है
नील घन माला में
सौदामिनी संधि सा सुन्दर क्षण भर रहा उजाला में।[६]'

यह संसार केवल मनुष्य के लिए ही तो नहीं है। मनुष्य से इतर और भी प्राणी इसी विश्व के अंश है और जीवन उनके लिए भी उतना ही आवश्यक है जितना कि मनुष्य के लिए, लेकिन मनुष्य अपने दर्प में यह समझना ही नहीं चाहता। कवि प्रसाद उसकी इसी भूल का अहसास इन शब्दों में कराते हैं -

'सुख को सीमित कर अपने में केवल दुःख छोड़ोगे
इतर प्राणियों की पीड़ा लख अपना मुँह मोड़ोगे
ये मुद्रित कलियाँ दल में सब सौरभ बन्दी कर ले
सरस न हो मकरन्द बिन्दु से खुल कर, तो ये भर लें
सूखे, झड़े और तब कुचले सौरभ को पाओगे
फिर आमोद कहाँ से मधुमय वसुधा पर लाओगे।[७]'

वे उसे याद दिलाते हैं -

'पशु से यदि हम ऊँचे हैं तो
भव जलनिधि में बने सेतु।[८]'

किन्तु बार-बार को तबाही भी मनुष्य को सावधान नहीं कर पा रही है। वह अपने मद में अपना ही संसार उजाड़ रहा है और आने वाली संततियों के लिए भी नरक की सृष्टि कर रहा है। उसकी भौतिकता उस पर और उसकी आने वाली पीढ़ी पर कितनी भारी है वह यह क्यों नहीं समझ पा रहा है?

आज हम सभी अत्यधिक गर्मी की मार से मर्माहत हैं। गर्मी का बेतहाशा बढ़ते जाना, वर्षा का कम होना, जलस्तर का नीचे होते जाना, भूस्खलन होना, नदियों का सूखना - इन - सारी स्थितियों के जिम्मेदार हम स्वयं हैं। पेड़ों को काट-काट कर कंक्रीट के जंगल बनाते जाना, गाड़ियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होना ये सारी स्थितियाँ हमें विनाश की ओर ले जा रही हैं किन्तु हम सब जानकर भी अनजान बने हुए हैं। संसार सभी प्राणियों के लिए हैं, यह सोच दिन व दिन कम होती जा रही है। मोबाइल का अतिशय प्रयोग, उससे निकलने वाली तरंगे न केवल मनुष्य पर दुष्प्रभाव डाल रही है बल्कि अन्य जीवों के लिए भी घातक सिद्ध हो रही है। जीवन शैली बदल जाने के कारण मनुष्य की ब्राह्म प्रकृति ही नहीं उसकी अन्तः प्रकृति भी प्रभावित हो रही है। बच्चे सारा दिन टी०वी०, मोबाइल फोन और कम्पुटर से चिपके रहते हैं और इस वजह से उनमें मोटापा और मधुमेह जैसे रोग बढ़ रहे हैं। वे समय से पहले बड़े हो रहे हैं। उनकी मानसिकता आक्रमक हो रही है और दुःख का विषय

यह है कि इन सारी चीजों के जनक हम स्वयं हैं। सृष्टि को बचाए रखने के लिए हमें इन चीजों को समझना होगा तभी मनुष्यता बचेगी तभी हम बच पाएँगे, समाज बच पाएगा और आनेवाली पीढ़ियाँ स्वस्थ रह पाएँगी। कवि प्रसाद की इन पंक्तियों के द्वारा अपनी बात का समाप्त करना चाहूँगी -

'संसृति के विक्षत पग रे
वह चलती है डगमग रे
अनुलेप सदृश तू लग रे।'

संदर्भ - ग्रन्थ सूची

१) आदर्श प्रकाश (नया ज्ञानोदय जून २०१५)

२) कामायनी (पृष्ट - १५)

३) अज्ञेय - (सबेरे उठा तो धूप खिली थी)

४) कामायनी (पृष्ट - ८)

५) कामायनी (पृष्ट - १०)

६) कामायनी (पृष्ट - १३)

७) कामायनी (पृष्ट - ५६)

८) कामायनी (पृष्ट - ६१)

९) लहर (जयशंकर प्रसाद पृष्ट - ५०)